श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष ११ { गौराब्द ४७९, मास—पद्मनाभ ७, वार—गर्भोदशायी
शुक्रवार, ३१ भाद्र, सम्वत् २०२२, १७ सितम्बर, १९६५ } संख्या ४

प्रार्थनापद्धतिः

श्रीराधिकायै नमः

[श्रीमद्रूप-गोस्वामि-विरचितम्]

शुद्धगाङ्गेयगौराङ्गीं कुरङ्गीलङ्गिमेक्षणाम् ।
जितकोटीन्दुबिम्बास्यामम्बुदाम्बरसंवृताम् ॥१॥

नवीनवल्लवीवृन्दधम्मिल्लोत्फुल्लमल्लिकाम् ।
दिव्यरत्नाद्यलंकारसेव्यमानतनुश्रियम् ॥२॥

विदग्धामण्डलगुरुं गुणगौरवमण्डिताम् ।
अतिप्रेष्ठवयस्याभिरष्टाभिरभिवेष्टिताम् ॥३॥

चञ्चलापाङ्गभङ्गेन व्याकुलीकृतकेशवाम् ।
गोष्ठेन्द्रसुतजीवातुरम्यबिम्बाधरामृताम् ॥४॥

त्वामसौ याचते नत्वा विलुण्ठन् यमुनातटे ।
काकुभिर्व्याकुलस्वान्तो जनो वृन्दावनेश्वरि ॥५॥

कृतागस्केऽप्ययोग्येऽपि जनेस्मिन् कुमतावपि ।
दास्यदानप्रदानस्य लवमप्युपपादय ॥६॥

युक्तस्त्वया जनो नैव दुःखितोऽप्यमुपेक्षितुम् ।
कृपाद्योतद्रवच्चित्तनवनीतासि यत् सदा ॥७॥

अनुवाद

हे वृन्दावनेश्वरि । जिनके श्रीअङ्ग तपाये हुए सोनेके समान गौरवर्ण हैं, हरिणी-के-से सुन्दर जिनके नेत्रयुगल हैं, जिनके श्रीमुखने करोड़ों चन्द्रबिम्बोंपर विजय प्राप्त कर ली है; जो मेघके समान नीलवर्ण की ओढ़नी ओढ़े हुए हैं, जो नवीन वय की गोपरमणियोंके केशमारा की फूली हुई मल्लिकाके समान हैं, जिनकी अङ्गकान्ति दिव्य रत्नादि अलंकारोंसे सेवित एवं पुष्ट हो रही है, जो विदग्धा नायिकाओंकी गुरु हैं, गुण गरिमासे सुशोभित हैं, आठ प्रियतमा सखियोंसे घिरी रहती हैं, अपन चञ्चल कटाक्षोंसे श्रीकृष्णको व्याकुल कर डालती हैं, जिनके बिम्बसदृश अधरोंका अमृत उन श्रीव्रजेन्द्रकुमारका जीवनप्राण है, ऐसी आपसे यह दास व्याकुलचित होकर यमुना-तट पर लोटता हुआ प्रणामपूर्वक गिड़गिड़ा कर प्रार्थना करता है कि आप इस अपराधी, अयोग्य एवं खोटी बुद्धिवाले जीवको भी अपनी सेवाका तनिक-सा भी अधिकार प्रदान करें । इस दुखिया की उपेक्षा करना आपके लिये उचित नहीं है, क्योंकि आपका चित्तरूपी नवनीत कृपाकी ज्योतिसे सदा पिघला रहता है ।

दीक्षित

मनुष्योंके त्रिविध जन्म--शौक्र, सावित्र और दैक्ष

श्रीभार्गवीय मनुसंहिता और श्रीमद्भागवतमें त्रिविध जन्मका उल्लेख है। वेदके विभिन्न शाखाओं में भी त्रिविध जन्मका उल्लेख है। वैदिक सन्दर्भोंमें भी इसका प्रमाण पाया जाता है।

शौक्र, सावित्र और दैक्ष—वेदोंमें इन त्रिविध जन्मोंका उल्लेख है। विशुद्ध पिता-मातासे प्राप्त जन्म ही शौक्र जन्म है। आचार्य (पुरोहित) के निकट गायत्री उपदेश प्राप्त करना ही सावित्र जन्म है और यज्ञोंके अनुष्ठानके निमित्त प्राप्त वैदिकी-दीक्षा ही दैक्ष जन्म है। शौक्र-जन्म ही आदि है, अतएव यहाँ संस्कारकी कोई आवश्यकता नहीं मानी गयी है। शूद्रोंके संस्कारादि कार्य नहीं होते। अशूद्र (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) आचार्यके निकट गायत्री उपदेशरूप संस्कार ग्रहण कर गुरुकुलमें वेदाध्ययन करते हैं—यही उनका सावित्र जन्म है। आनुष्ठानिक यज्ञमें कृतित्व लाभ करने पर दीक्षा-ग्रहण नामक द्वितीय संस्कारके द्वारा तृतीय-जन्मकी प्राप्ति होती है। अशूद्र व्यक्ति द्वितीय जन्ममें द्विज और तृतीय जन्ममें त्रिज कहलाते हैं। ब्राह्मणोंका ही तृतीय-जन्म अर्थात् दैक्ष-जन्म होता है।

त्रिविध जन्मोंका काल-निर्णय;'व्रात्य' कौन है?

क्षत्रिय और वैश्योंका तृतीय जन्म नहीं है। ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न व्यक्ति द्वितीय जन्म प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु सोलह वर्षके बीत जाने पर भी यदि वह सावित्र-संस्कार ग्रहण न करें, तो ऐसे व्यक्तिको द्विज न कहकर 'व्रात्य' ही कहा जायगा। बीस वर्ष तक द्विज-संस्कार ग्रहण करने से क्षत्रिय हो सकते हैं और बाईस वर्ष काल तक वैश्योचित संस्कार ग्रहण किया जा सकता है। उसके व्यतीत हो जाने पर 'द्विज' न कहला कर 'व्रात्य' कहे जाते हैं।

युग-प्रभावसे धर्मका ह्रास-कलिकालमें तीनों वैदिक जन्मोंका अभाव

सत्य, त्रेता, द्वापरमें वैदिक अनुशासनका क्रमशः ह्रास होता आ रहा है। कलिकालके प्रारम्भमें ही धर्मका त्रिपाद नष्टप्राय हो गया था। और अब चतुर्थ पाद भी आक्रान्त हो गया है। अतएव वैदिक अनुष्ठान अब केवल नाम-मात्रके लिये प्रचलित हैं। इसलिये द्वापर युगमें पशु-हत्याके द्वारा अनुष्ठित यज्ञादि क्रियाओंका ह्रास होने लगा। उसके स्थान पर श्रीमूर्ति-सेवाका प्रवर्त्तन हुआ। कलिकालमें कर्म-यज्ञ और अर्चनादि कार्य सम्यक् रूपसे अनुष्ठित नहीं हो सकते। अतएव वर्तमान युगमें नाम-यज्ञका प्रवर्त्तन हुआ है। यद्यपि वर्तमान-युगमें बाह्य-सावित्र संस्कारादि क्रियाका प्रचलन है, तथापि दीक्षा-संस्कार या वैदिक त्रिजन्मकी संभावना नहीं है।

बद्ध जीवोंका नाम-यज्ञ ही कलिकालमें यज्ञाधिकार है

कलिकालमें नाम-यज्ञ ही संभव है। अतएव

नाम-यज्ञके अधिकारी व्यक्ति दीक्षा लाभ कर नाम-यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। महाभागवताधिकारमें ही नाम यज्ञका याज्ञिक होना संभव है । कनिष्ठाधिकारी नाम यज्ञमें अधिकार प्राप्त करने योग्य प्रारम्भिक अधिकारको प्राप्त करनेकी इच्छासे महाभागवतके निकट दीक्षा ग्रहण करते हैं । महाभागवतके निकट बद्धजीव जो दीक्षा ग्रहण करते हैं, उसमें सम्बन्ध-ज्ञान भी युक्त होता है।

मुक्तजीव नाम-यज्ञमें दीक्षित हैं, अतएव वे ही श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं

मुक्त जीवोंकी नाम-यज्ञमें ही दीक्षा होती है । मुक्त जीव कहनेसे वर्णाश्रमातीत महाभागवत-श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही समझना चाहिये । श्रीहरिदास ठाकुर ही इसके श्रेष्ठ आदर्श और प्रमाण हैं । महाभागवत-श्रेष्ठ ब्राह्मण ही वैष्णव हैं । वे दूसरोंको विष्णुदीक्षा देनेमें समर्थ हैं । कनिष्ठाधिकारी जिस मंत्रका जप करते हैं, उससे उनकी संसार-मुक्ति नहीं होती । जब मन्त्रकी सिद्धिसे उनका बद्धाभिमान दूर होता है, उसी समय वे मुक्त पुरुषोंके उपास्य श्रीहरिनामका कीर्तन कर सकते हैं ।

कलिकालमें वैदिक अनुष्ठानोंकी असफलता; कलिकालमें ब्राह्मणोंकी अवस्था

कलिकालमें वैदिक अनुष्ठान सर्वतोभावसे सफल नहीं हो सकते हैं । शूद्रकल्प ब्राह्मणाभिमानी व्यक्ति कल्मषमय कलियुगमें जन्म ग्रहण कर ब्रह्मेतर मायिक वस्तुओंकी उपासनामें ही मत्त रहते हैं । वे अपने पूर्व-जन्मोंकी दुष्कृतिके कारण ब्रह्मज्ञ होकर भी विष्णुकी उपासनाके बदलेमें पञ्च-देवताओंकी ही उपासना कहते हैं। विष्णुके परमपदकी अवज्ञा कर अन्य देवताओंको और विष्णुको एक समान समझते हैं । इसलिये यज्ञेश्वर विष्णुकी उपासनारूप वैदिक-यज्ञसे अधिकार-च्युत हो जानेके कारण वे ब्राह्मण नहीं कहे जा सकते ।

वैष्णव-सदाचार-स्मृतिका परिचय और उसकी प्रचार-प्रचेष्टा

वेदानुग तंत्र-शास्त्रोंने वेदानुगमनमें जिन अनुष्ठानिक विधियोंका सात्वत-तंत्र समूहोंमें उल्लेख किया है वे तंत्र-समूह पञ्चरात्र, आगम या वेद-विस्तृति कहलाते हैं । श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुके आदेश से श्रीगौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रीसनातन गोस्वामीजीने 'श्रीहरिभक्तिविलास' नामक वैष्णवस्मृतिका संकलन किया है । उनके दासाभिमानी छः गोस्वामियोंके अन्यतम, सदाचार-निरत एवं कनिष्ठ भागवतोंके भी उपास्य आदर्श महापुरुष श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीजीने 'सत्क्रियासारदीपिका'एवं श्रीहरिभक्ति-विलास ग्रन्थोंको क्रान्ति व्युत्क्रान्ति विचार-धारामें गुम्फित किया है । गौड़ीय वैष्णवोंकी पारमार्थिक स्मृति-विहित अनुष्ठान आदि क्रियाएँ यद्यपि बहिर्मुख स्मार्तोंके विचारोंसे न्युनाधिक प्रभावित है तथापि वर्तमान समयमें उनके सुप्रचारका समय आ गया है ।

मानव-मात्रका ही पाञ्चरात्रिकी दीक्षामें अधिकार है और फलस्वरूप उनका द्विजत्व अवश्यंभावी है

श्रीहरिभक्तिविलासमें दिये गये शास्त्रीय प्रमाणों

से यह जाना जाता है कि शूद्राशूद्र मनुष्यमात्र वैदिकी दीक्षाके अधिकारी न होनेपर भी पाञ्चरात्रिकी दीक्षाके अधिकारी हैं। सावित्र संस्कार प्राप्त कर गुरुकुलमें वास न करने पर भी, द्विजगण व्रात्य होने पर भी अथवा शूद्र और अन्त्यज कुलमें जन्म ग्रहण करने पर भी सुकृतिके बल पर पाञ्चरात्रिकी दीक्षामें सबका अधिकार है। पाञ्चरात्रिकी दीक्षा प्राप्त कर मानवमात्र ही द्विजत्वको प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि स्त्रियोंके उपनयनादि संस्कार नहीं होते, तथापि वे द्विज बन सकती हैं और नाम-यज्ञ एवं अर्चनादि कार्योंमें योग्यता प्राप्त कर सकती हैं। यदि पुरुषोंका उपनयनादि नहीं हो, तो उन्हें प्रकृत दीक्षाकी प्राप्ति नहीं हुई, यही जानना चाहिये। परमहंसाधिकारमें यज्ञसूत्रादि वर्ण-चिह्न नहीं रहते। दण्ड-कषाय वस्त्रादि आश्रम चिह्न भी नहीं होते। उस अवस्थामें अधिकार प्राप्त व्यक्ति वर्णाश्रममें अवस्थित होकर अर्चनादि कार्य नहीं करते। शास्त्रोंका कहना है कि जिस प्रकार नीचधातु कांसा रासायनिक प्रक्रियासे सोना बन जाता है, उसी प्रकार सद्गुरुके निकट पञ्चसंस्काररूप दीक्षा प्राप्त करने पर मानवमात्र ही द्विजत्वको प्राप्त करते हैं।

कलिकालमें शौक्र ब्राह्मणोंको शूद्रत्वकी प्राप्ति

कलिकालमें द्विज होकर भी बहुतसे व्यक्ति द्विज-स्वभावके विपरीत पञ्चोपासना करते हैं और विष्णु की अवज्ञा करते हैं। वे द्विजत्वसे भ्रष्ट होकर शूद्र या अन्त्यज हो पड़ते हैं। इसलिये अधिकारक्रमसे द्विज होना तो दूर रहा, वरं अन्त्यजत्व या शूद्रत्वको ही वे द्विजाचार समझते हैं। गौड़ीय वैष्णवोंमें विगत दो तीन सौ वर्षोंसे पारमहंस्य वैष्णवाचार के नाम पर अनेक स्थानोंमें ही अन्त्यज-शूद्राचारका प्रवर्त्तन हुआ है। ऐसे प्रवर्त्तनकारी व्यक्तियोंने-स्मार्तोंके अनुगमनमें शूद्र-दीक्षाके द्वारा वैदिक वैष्णव-धर्मकी प्रचुर हानि की है और अनुपयुक्त गुरु बनकर शिश्नोदर-परताकी ही वृद्धि की है। शिष्यों को यथाविधि पाञ्चरात्रिकी दीक्षा प्रदान करने के बदलेमें उन्हें और भी भ्रष्ट ही किया है। वैष्णव करनेके बदलेमें विष्णुके साथ विरोध करवाया है और अपने-अपने योषित्संगज प्राकृत वर्णाश्रम धर्मका अनुमोदन किया है।

रसिकानन्द प्रभुकी धारामें शौक्रधारा स्तब्ध है

यदि वास्तवमें कोई तत्त्वविद् गुरु किसी सत् शिष्यको पाञ्चरात्रिकी दीक्षा देते हैं और पञ्चसंस्कार प्रदान करते हैं, तो वे अपने शौक्र जन्मके अभिमान में परमार्थका विलोप नहीं कर सकते—गुरु बनकर अपनेको अधःपातित नहीं कर सकते। श्रीरसिकानन्द प्रभुकी धारामें ये सभी विचार प्रबल होनेके कारण श्रीचैतन्यमहाप्रभु और छः गोस्वामियों द्वारा प्रचारित शुद्ध धर्मका मत वहाँ सुन्दररूपमें रक्षित हुआ है।

सामाजिक ब्राह्मणोंकी दीक्षा पारमार्थिक नहीं है, कौलिक क्रियामात्र है; अतएव परित्याग करने योग्य है

दीक्षित व्यक्तियोंके द्वारा प्रदत्त जल और पकाया हुआ भोजन यदि अदीक्षित (ब्राह्मण) व्यक्तियों द्वारा प्रदत्त जल और पकाए हुए भोजनके तुल्य गृहीत हो अथवा न हो, तो परमार्थ-विचारमें किस प्रकारका अविचार और अत्याचारका प्रवेश कराना

हुआ, यह बुद्धिमान विचारकोंके द्वारा निरपेक्ष रूपसे आलोच्य है । दीक्षित व्यक्ति यदि दीक्षा ग्रहण करनेके पश्चात् भी शूद्र ही रहें, तो दीक्षादाता किस वर्णमें पतित हुए ? यही हमारा प्रश्न है । यदि वे पतित न हुए हों या दीक्षा न प्रदान किये हों अथवा शूद्र-दीक्षा ही प्रदान किये हों, तो उन्हें पारमार्थिक गुरु क्यों कहा जायगा ? ऐसे गुरुको कौलिक पुरोहित न कहकर पारमार्थिक गुरु कैसे कहा जा सकता है ? शौक्र-कुल-धर्मकी रक्षा करनेके लिये, समाजके कल्याणके लिये जो-जो क्रियाएँ धर्मके नामसे प्रचलित हैं, वे केवल पुरोहितके ही कार्य हैं। पतितोंको इन कार्योंके द्वारा उन्नत नहीं किया जा सकता। परमार्थकामी व्यक्तिमात्र ही ऐसे नामधारी पुरोहितोंको पुरोहित मात्र रखकर अकिञ्चन परमार्थ-गुरुके निकट वैष्णवी-दीक्षा ग्रहण करें। कौलिक गुरुओंको पुरोहित जानकर उनके जीवनकी रक्षा लिये थोड़ा बहुत प्रबन्ध कर देनेसे पारमार्थिक धर्म अक्षुण्ण रहेगा । प्रत्येक गौड़ीय-वैष्णवका यह कर्त्तव्य है कि मन्त्र-जीवी, भागवत-जीवी, कीर्तन-जीवी मृदङ्ग-जीवी, अर्चन-जीवी आदि व्यक्ति गौड़ीय-वैष्णव समाजको अर्थ के द्वारा दूषित न करें—इसके लिये चेष्टा करें।

दीक्षित व्यक्तिको उपनयन संस्कार न देनेसे वे गुरु बनने योग्य नहीं हैं और त्याज्य हैं

यदि दीक्षित व्यक्तिको द्विजत्वकी प्राप्ति नहीं होती, तो धर्मशास्त्रकार बृहस्पतिके वाक्यानुसार यही जानना चाहिये कि वहाँ धर्मकी हानि मात्र हुई है। शास्त्रोंके अनुसार दीक्षा ग्रहण करनेके पश्चात द्विजत्वकी प्राप्ति होती है। यदि ऐसा न हो, तो निश्चय ही दीक्षा नहीं दी हुई है—यही जानना चाहिये। दीक्षा ग्रहण करनेसे उसका फल अवश्य होता। फलरूप कार्यके द्वारा ही कारणको जाना जाता है। श्रीमद्भागवतके 'तत् तेनैव विनिर्दिशेत्' —इस वाक्यकी अवहेला कर यदि कोई अपनेको वैष्णव समझकर गुरु बननेकी चेष्टा करें, तो ऐसे व्यक्तिको गुरु नहीं मानना चाहिये, यही शास्त्रोंका तात्पर्य है—

यो व्यक्ति न्यायरहितमन्यायेन शृणोति यः ।
तावुभौ नरकं घोरं व्रजतः कालमक्षयम् ॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥

इन सभी शास्त्रोंके वचनोंके अनुसार प्रच्छन्न-शत्रुओंका (गुरु नामधारी व्यक्तियोंका) त्याग करना चाहिये। ऐसा नहीं करनेसे गौड़ीय-वैष्णव-धर्मकी मर्यादा अक्षुण्ण नहीं रह सकती और जीवोंके भजन पथमें कण्टक (बाधा) की सृष्टि मात्र होगी ।

अवैष्णव व्यक्ति गुरु या ब्राह्मण नहीं हैं

अवैष्णवोंको गुरु नहीं करना चाहिए। शास्त्र प्रमाण—

"महाकुल-प्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
सहस्र शाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः ॥"
"महाभागवत-श्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम् ।
सर्वेषामेव लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः ॥"

इसलिये अवैष्णव व्यक्ति कदापि ब्राह्मण नहीं हो सकते, गुरु नहीं हो सकते। जो व्यक्ति अहंकार-

वशतः अपनेको वैष्णवोंका गुरु समझते, हैं, ऐसे मूढ़ जीवोंको कभी भी गुरु कहा नहीं जा सकता। जो व्यक्ति अपनेको वैष्णवोंका दास समझते हैं और यह जानते हैं कि वैष्णवोंके दासत्वको छोड़कर ब्राह्मणताकी संभावना नहीं हैं, वे ही ब्राह्मण और गुरु कहलाने योग्य हैं। ऐसे ब्राह्मण-गुरुके निकट ही वैष्णव-दासाभिमानी व्यक्ति पाञ्चरात्रिकी दीक्षा ग्रहण करेंगे; दीक्षा ग्रहणके पश्चात् उन्हें द्विजत्वकी प्राप्ति होगी। ऐसे व्यक्ति यज्ञसूत्रादि उपनयन विधियोंका यथारीति अनुसरण कर सदाचार सम्पन्न और विनयी होंगे। अन्यथा वैष्णवदास्य जन्म जन्मान्तरमें भी प्राप्त नहीं हो सकता।

'दीक्षाप्रभावसे द्विजत्व'—इसे अस्वीकार करनेवाले व्यक्ति समाजके द्वारा परित्याग करने योग्य हैं

हरिभक्तिविलासमें इस शास्त्र-वचनका प्रमाण दिया है—

"गृहीत-विष्णुदीक्षाको विष्णु-पूजापरो नरः।
वैष्णवोऽभिहितोऽभिज्ञैरितरोऽस्मादवैष्णवः॥
(पद्म पुराणसे)

जो व्यक्ति वैष्णवोंके द्वारा वैष्णव कहलाते हैं, वे पारमार्थिक गुरुके निकट दीक्षा ग्रहण करेंगे। दीक्षा-प्रभावसे द्विजोचित संस्कार ग्रहण करेंगे। संस्कृत द्विज ही विष्णुपूजा करनेके अधिकारी हैं। उस समय वे ही गुरुसेवाके लिये जल लानेके अधिकारी हैं और उनके द्वारा पकाए हुए अन्नादिके द्वारा ही विष्णु-प्रकाश-विग्रह गुरुदेवकी सेवा कर सकते हैं। उस अवस्थामें समाज उन्हें परमार्थमें बाधा न देवें। अगर बाधा प्रदान करें तो ऐसे घृणित समाज को प्रतिकूल जानकर परित्याग कर हरिभक्तिके अनुकूल समाजको ग्रहण करना चाहिये। परमार्थ विरोधी समाजमें वास नहीं करना चाहिये। श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

गुरर्न स स्यात्, स्वजनो न स स्यात्।
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्यात्
न मोचयेत् यः समुपेत - मृत्युम्॥

श्रीमन्महाप्रभुजीके परवर्तीकालमें वैष्णवसमाजके नामपर स्मार्त्तानुगत्य

क्षुद्र जड़ वस्तुकी आशामें परमार्थसे विच्युत होना उचित है या नहीं, इसका गौड़ीय-नामधारी वैष्णवमात्र ही विचार करें। जड़ जगतका परिचय केवल सौ वर्षोंके लिये—इन्द्रिय-तर्पण एवं हरि-विमुख-स्वार्थके पोषणके लिये है। किन्तु परमार्थिक जीवन-नित्यकालके लिये है। यह हरिप्रेम तात्पर्यमय और परम निष्काम है। श्रीचैतन्यमहाप्रभु और उनके पार्षद गोस्वामियोंके प्रकटकालके पश्चात् श्रीगौड़ीय वैष्णव समाजके नामसे जो विशृङ्खलता और स्मार्तोंके अनुगमनका जो कार्य चल रहा है, वह वैष्णव-धर्मके लिये ग्लानि मात्र है। इस ग्लानि को दूर करनेके लिये श्रीचैतन्यमहाप्रभु अपने निज-जनोंको समय समय पर भेजते रहते हैं। तथापि हम लोग उन महाजन परमार्थवित् वैष्णव स्मार्तोंका अनुसरण न कर विपथगामी क्यों बनते जा रहे हैं? हम लोग शास्त्र ज्ञानसे विताड़ित होकर स्वार्थान्ध अवैष्णवोंके जालमें पड़कर अपने अमूल्य जीवनको हरिविमुख अवस्थामें क्यों बिता रहे हैं? क्या

परमार्थ विरोधी समाज चिरदिन तक प्रबल रहेगा ? साधुओंके हितोपदेश, शास्त्रोंका सूक्ष्म तात्पर्य, शास्त्रकारोंकी निरपेक्षता क्या चिरदिन ही अवहेलित रहेंगी ? क्या श्रीहरिभक्तिविलासकी महिमा चिरदिन ही हरिविमुख स्मार्तोंके विरोधरूपी अन्धकारमें आबद्ध रहेगी ?

'सत्क्रियासार-दीपिका' के आनुगत्यकी आवश्यकता

क्या भवदेव-पद्धति चिरदिन ही 'सत्क्रियासार-दीपिका' को आवृत रखेगी ? रघुनन्दनका संस्कार तत्व चिरदिन ही ढका हुआ है। कभी भी वह उन्मुक्त नहीं हुआ। तब क्यों 'सत्क्रियासारदीपका' की अमर्यादा होगी ? अतएव हम शास्त्रज्ञ गौड़ीय वैष्णवोंसे विनयपूर्वक यह अनुरोध करते हैं कि वे अपने आँखोंको उन्मीलन कर अपने गुरु वर्गोंका अनुगमन करें। वे महाभारतके "शूद्रोऽत्यागम-सम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः" और "यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्" श्लोकोंकी विशेषरूपसे आलोचना करें और विष्णु विद्वेषी समाजसे मुक्त होनेकी चेष्टा करें। ऐसा करने पर उनको भोग विलासके स्थान पर मोक्षकी प्राप्ति होगी। उस समय वे श्रीमूर्तिका अर्चन और श्रीनामकीर्तन करनेमें समर्थ होंगे।

पुनः वैष्णव-स्मृति स्थापनका आश्वास

दीक्षित व्यक्तियोंका द्विजत्व नहीं है, केवल शौक्र पन्थामें ही द्विजत्व वर्त्तमान है, ऐसी भ्रान्त धारणाके द्वारा धर्मकी जो ग्लानि हुई है एवं फलस्वरूप जो उत्पात हुआ है, उसका निराकरण करना आवश्यक है। श्रीनित्यानन्द प्रभुके अवतार त्रिदण्डी-यतिवर श्रीरामानुजाचार्यजीने दाक्षिणात्यवासी श्रीवैष्णवोंको पञ्चोपासकोंके कवलसे उद्धार किया था। वर्तमान समयमें हम जैसे दुर्बल वैष्णवदासोंकी चेष्टा से आर्यवर्तमें पुनः शास्त्रीय धर्मकी संस्थापना होगी। आउल, बाउल, प्राकृत सहजिया, नेड़ा, दरवेश, साँई, गौरनागरी, शौक्र गोस्वामी उपाधिधारी, कपट वैरागी आदि प्रच्छन्न वैष्णव द्वेषियोंके कवलसे गौड़ीय वैष्णव समाज का उद्धार करनेके लिये श्रीगुरुगौराङ्गका शरण ग्रहण करता हूँ। भक्तिस्रोतके मूल प्रवर्त्तक ठाकुर श्रील भक्तिविनोदने गाया है—

आमि तव वैष्णव, ए बुद्धि हइले, अमानी ना हब आमि।
प्रतिष्ठाशा आसि, हृदय दूषिबे, हइब निरयगामी॥
तोमार किंकर, आपने जानिब, गुरु अभिमान त्यजि।
तोमार उच्छिष्ट, पदजलरेणु, सदा निष्कपटे भजि॥
निजे श्रेष्ठ जानि, उच्छिष्टादि दाने, हबे अभिमान भार।
ताइ शिष्य तव, थाकिया सर्वदा, ना लइब पूजा कार॥
अमानी मानद, हइले कीर्तने, अधिकार दिबे तुमि।
तोमार चरणे, निष्कपटे सदा, काँदिया लूटिब भूमि॥

—(दीक्षित वैष्णवदासका अभिमान)

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(अवतार तत्त्व)

१—अवतार-तत्त्व क्या है ? भगवान जगतमें क्यों अवतीर्ण होते हैं ?

"मायाबद्ध जीव अपने-अपने भावको प्राप्त कर जिन-जिन स्वरूपोंको पाते हैं, श्रीकृष्ण भी उनके प्राप्त भावको स्वीकार करते हुए अपनी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा आध्यात्मिक रूपमें अवतीर्ण होकर उनके साथ लीलाएँ करते हैं। जीव जब मत्स्यावस्थाको प्राप्त करता है, भगवान भी उस समय मत्स्यावतार होते हैं। मत्स्य-निर्दण्ड है। निर्दण्डता क्रमशः वज्रदण्डावस्था होनेपर कूर्मावतार, वज्रदण्ड क्रमशः मेरुदण्ड होने पर वराहावतार होते हैं नर-पशुभाव गत जीवमें नृसिंहावतार, क्षुद्र मानवमें वामनावतार, मानवके असभ्यावस्थामें परशुराम एवं सभ्यावस्थामें रामचन्द्र होते हैं। मानवोंके सर्वविज्ञान सम्पन्न होने पर स्वयं भगवान कृष्णचन्द्र आविर्भूत होते हैं। मनुष्य तर्कनिष्ठ होने पर भगवद्भाव बुद्ध-रूपमें अवतीर्ण होते हैं और नास्तिक होने पर कल्कि भगवान अवतीर्ण होते हैं। ऐसा प्रसिद्ध मत के अनुसार है। जीवोंके क्रमोन्नत हृदयमें जिन सभी भगवद्भावोंको समय-समय पर उदय होते हुए देखा गया है, वे सभी भगवद्भाव ही 'अवतार' हैं। उन सभी भावोंकी उत्पत्ति और कार्योंमें प्रापञ्चिकत्व नहीं है। जीवोंकी उन्नतिके इतिहासकी आलोचना करते हुए ऋषियोंने ऐतिहासिक कालको दस भागोंमें विभक्त किया है। जब-जब एक-एक अवस्थान्तर लक्षण प्रधान रूपमें देखा गया है, उस समयके उन्नत भावको 'अवतार' कह कर वर्णन किया गया है। कुछ विद्वानोंने कालको चौबीस भागमें विभक्त किया है। किसी-किसीने अठारह भाग कर अठारह अवतारोंका निरूपण किया है।

(कृ० स० ३।५-११ का अनुवाद)

२—अवतार तत्त्वका वैज्ञानिक-विचार क्या है ?

"अदण्डावस्थासे मनुष्योंकी पूर्णावस्था तक किसी-किसी ऋषियोंने आठ, किसी-किसीने अठारह और किसी-किसीने चौबीस अवतारका वर्णन किया है। दसों अवतार ही प्रायः अधिकांश वैज्ञानिक ऋषियोंके मतानुसार प्रसिद्ध हैं। इन सभी ऋषियों ने जीवके प्रथम बद्धावस्थामें पहलेसे लेकर आखिर तक दस विशेष विशेष अवस्थाओंकी कल्पना की है। पहली अवस्थामें अदण्डावस्था, दूसरी अवस्थामें वज्रदण्डावस्था, तीसरी अवस्थामें मेरुदण्डावस्था, चौथी अवस्थामें उत्थित मेरुदण्डावस्था, अर्थात् नर-पशु अवस्था, पाँचवीं अवस्थामें क्षुद्र नरावस्था, छठवीं अवस्थामें असभ्य नरावस्था, सातवीं अवस्था में सभ्य नरावस्था, आठवीं अवस्थामें ज्ञानावस्था, नौवीं अवस्थामें अतिज्ञानावस्था, और दसवीं अवस्थामें प्रलयावस्थाकी कल्पना की है। जीवोंका इस प्रकारके ऐतिहासिक अवस्था क्रमसे मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध

और कल्कि—ये दस अवतार अप्राकृत लीलारूपमें लक्षित होते हैं।"

—त० सू० ६ ठवाँ सूत्र

३—आद्यावतार की क्या लीला है ?

"सृष्टिकामयुक्त संकर्षण ही प्रपञ्च की सृष्टिके निमित्त अवतीर्ण कृष्णांश हैं। वे कारण समुद्रमें आद्यावतार पुरुषरूपमें शयन करते हुए मायाके प्रति ईक्षण करते हैं। वही ईक्षण सृष्टिका निमित्त कारण है।"

—ब्र० सं० ५।८

४—भगवानके आविर्भावका क्या कारण है ?

ईश्वरके विलास दो प्रकारके हैं। चिदचिदात्मक ब्रह्माण्ड सृष्टि और अलग नियमोंके द्वारा जगत्की व्यवस्था करना ही उनका पहले प्रकारका विलास है। शुष्क ज्ञानी लोग ऐसे विलासका थोड़ा बहुत अनुभव कर सकते हैं। इस भगवद् रचित ब्रह्माण्ड में भगवानकी जो लीलाएँ होती हैं, वही उनका दूसरे प्रकारका विलास है। जीव ही भगवानकी लीलाओंका सहचर है। जीव भोगेच्छासे अपने स्वरूपसे विच्युत होकर जड़सङ्गवशतः जिन-जिन अवस्थाओंको प्राप्त होते हैं, उन-उन अवस्थाओंके अनुरूप भगवदाविर्भावका भी दर्शन करते हैं। जीवोंके प्रति अपार करुणा ही भगवदाविर्भावका एकमात्र कारण है।"

—त० स०, ६ ठवाँ सूत्र

५—श्रीमूर्ति या अर्चावतारकी क्या आवश्यकता है ?

"सभी निराकार तत्त्वोंके ही निदर्शन होते हैं। यद्यपि निदर्शन लक्षित वस्तुसे भिन्न है, तथापि उसके द्वारा उस वस्तुका भाव उपस्थित होता है। घड़ीके द्वारा निराकार काल, प्रबन्धके द्वारा अति सूक्ष्म-ज्ञान एवं प्रतिकृतिके द्वारा दया-धर्मादि सभी निराकार विषय जब परिज्ञात होते हैं, तब भक्तिके साधनमें आलोच्यगत लिङ्गरूप श्रीविग्रहके द्वारा जो उपकार होता है, उसमें कोई सन्देह नहीं है।"

—प्रे० प्र०, ५ वाँ परिच्छेद

६—क्या वैष्णवोंकी श्रीमूर्तिकी सेवा पौत्तलिकता है ?

"वैष्णव लोग जिस श्रीविग्रहकी पूजा करते हैं, वह ईश्वरका ही स्वरूप है, केवल पुतली नहीं है। वह ईश्वर-भक्तिका उद्दीपक और निदर्शन मात्र है।"

—प्रे० प्र०, ५ वाँ परिच्छेद

७—श्रीविग्रह कैसे भगवत् स्वरूपका साक्षात् निदर्शन है ?

श्रीविग्रह भगवत स्वरूपके साक्षात् निदर्शन हैं। वे स्वरूपेतर वस्तु नहीं हो सकते। सब प्रकारके शिल्प और विज्ञानने जिस प्रकार अलक्षित तत्त्वका स्थूल प्रतिरूप होता है, उसी प्रकार श्रीविग्रह जड़ आँखों से अगोचर भगवत् स्वरूपका प्रति रूप है। भक्तोंके भगवत् स्वरूपका प्रतिरूप यथार्थ है। भक्तजन अपनी विशुद्ध भक्तिवृद्धि रूप फलके द्वारा अनुक्षण ऐसा अनुभव करते हैं। विद्युत पदार्थके साथ विद्युत यंत्रका जो प्रकृत सम्बन्ध है, उसे केवल विद्युत फलकोत्पत्तिरूप फलके द्वारा जाना जाता है। इस विषय में जो अनभिज्ञ हैं, वे विद्युतयन्त्रको देखनेसे क्या

समझेंगे ? जिनके हृदयमें भक्ति नहीं है, वे श्रीविग्रह को पुत्तलिका छोड़कर और क्या समझ सकते हैं ?"

चै. शि. ५।३

८—भक्तजनोंके अर्चावतार और ज्ञानियोंके प्रतीकमें क्या भेद है ?

श्रीमूर्त्ति पहले जीवके चिद्भागमें प्रतिभात होकर मनमें उदित होते हैं। मनसे निर्मित श्रीमूर्तिमें भगवान भक्तियोगके द्वारा आविर्भूत हो पड़ते हैं। उस समय भक्त उनके दर्शनसे हृदयमें जिस चिन्मय मूर्तिका दर्शन करते हैं, उनके साथ श्रीमूर्तिकी एकता स्थापन करते हैं। किन्तु ज्ञानियों द्वारा पूजित विग्रह वैसा नहीं होता। उनके मतानुसार एक पार्थिव तत्त्व में ब्रह्मता कल्पित होकर पूजाकाल तक उपस्थित रहता है। पश्चात् वह मूर्ति पार्थिव वस्तु छोड़कर और कुछ भी नहीं है।"

—जै. ध., ५ म अ.

९—सभी अधिकारके व्यक्ति क्या श्रीविग्रहकी सेवा करते हैं ?

"प्रतिमा-पूजा मानव-धर्म का भित्तिमूल है। महाजनोंने विशुद्ध ज्ञानयोगके द्वारा परमेश्वर की जिस मूर्तिको देखा, वे अपने भक्तिपूत-चित्तमें उसी शुद्ध चिन्मय मूर्तिकी भावना करते हैं। ऐसी भावना करते-करते जिस समय भक्त-चित्त जड़-जगत के प्रति प्रसारित होता है, उस समय ही जड़जगतमें उस चित्त स्वरूपका प्रतिफलन अंकित होता है। भगवत् श्रीमूर्ति इस प्रकार महाजनोंके द्वारा प्रतिफलित होकर प्रतिमा हुए हैं। वे प्रतिमाएँ ही उच्चाधिकारियोंके लिए सर्वदा चिन्मय-विग्रह हैं, मध्यमाधिकारीके लिऐ मनोमय विग्रह हैं, और निम्नाधिकारीके लिए पहले जड़मय विग्रह होने पर भी क्रमशः भावशोधित बुद्धिमें चिन्मय-विग्रहका उदय होता है। अतएव सभी अधिकारियोंके द्वारा ही श्रीविग्रहकी प्रतिमा पूजनीय हैं। कल्पित मूर्तिकी पूजाकी कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु नित्यमूर्ति की प्रतिमा विशेष मङ्गलमय है।"

१०—प्रतीक-विरोधी युक्तिवादी किस प्रकार के मूर्ति पूजक हैं ?

"कोई-कोई चित्तमें भक्ति-परिप्लुत होकर आत्मा में, मनमें एवं जगतमें परमेश्वरकी प्रतिच्छविरूप श्रीमूर्तिकी स्थापना करते हैं। उसमें तादात्म्यज्ञान-युक्त होकर उसका अर्चन करते हैं। किसी-किसी धर्ममें अधिकतर तर्कप्रियताके कारण मन ही मन ईश्वर भावका गठन कर उसीमें उपासना करते हैं। किन्तु प्रतिमूर्तिको नहीं माना जाता। अगर देखा जाय, तो वस्तुतः सभी ही प्रतिमूर्तियाँ हैं।"

—चै० शि० १।१

११—सारग्राही वैष्णवगण श्री श्रीजगन्नाथजीका किस विचारसे युक्त होकर दर्शन करते हैं ?

"The system of Jagannath is viewed in two different ways. The superstitious and the ignorant take it as a system of idolatry by worshipping the idols in the temple as God Almighty appearing in the shape of a carved wood for the salvation of the Orias. But the Saragrahi Vaishnavas find the idols as emblems of some eternal truth which has been explained in the Vedanta Sutras of Vyasa."

—The Temple of Jagannath at Puri

(क्रमशः)

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ)

षट् सन्दर्भके तत्त्व, परमात्म, भगवत् और श्रीकृष्णसन्दर्भमें सम्बन्ध-तत्त्वका निरूपण हुआ है। प्रथमोक्त तीन सन्दर्भोंमें जिस तत्त्व-वस्तुका सर्व-श्रेष्टत्व स्थापित हुआ है, उसी परतत्त्व वस्तुका विशेष परिचय देना ही इस वर्तमान सन्दर्भका उद्देश्य है। श्रीराम, श्रीनृसिंह, नारायण और श्रीवामनादि—ये भगवानके अनेक स्वरूप होने पर भी इन सबमें कौनसे भगवत्स्वरूप सर्वश्रेष्ठ हैं—इसका विवेचन होना आवश्यक है।

श्रीमद्भागवतमें श्रीसूत गोस्वामीने शौनकादि ऋषियोंको बतलाया है कि अद्वयवस्तुके तीन प्रकाश हैं अर्थात् एक ही परतत्त्व ज्ञानियोंके निकट निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें, योगियोंके निकट परमात्माके रूपमें और भक्तोंके निकट भगवानके रूपमें प्रकाशित हैं। बहुधर्माश्रयी एक ही वस्तु ग्रहण करनेके भेदसे अनेक रूपोंमें उपलब्ध होता है—

यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः।
एको नानेयते तद्वद्भगवान् शास्त्रवर्त्मभिः॥

(भा० ३।३२।३३)

दूधको लीजिये। दूध सफेद होता है, शीतल होता है, स्वादिष्ट होता है इत्यादि। इसलिये वह बहुगुणाश्रयी होता है। अब दूध एक वस्तु होने पर भी पृथक्-पृथक् इन्द्रियों द्वारा पृथक् पृथक् रूपमें अनुभूत होता है—उसका नेत्रसे श्वेतत्व, त्वचा द्वारा शीतलत्व और जिह्वाद्वारा मधुरत्व अनुभूत होता है। उसी प्रकार अद्वयवस्तु भगवान भी विभिन्न प्रकारके अधिकारियोंके निकट विभिन्नरूपोंमें प्रतीत होते हैं। आँख और त्वचा द्वारा दूधका ज्ञान पैदा होने पर भी वह असम्यक्, आंशिक और बाह्य ज्ञान है, परन्तु रसना द्वारा ही दूधकी पूर्ण उपलब्धि और माधुर्य आदिकी अनुभूति होती है। ठीक उसी प्रकार कर्म, ज्ञान और योग द्वारा परतत्त्वकी आंशिक और असम्यक् उपलब्धि होती है; परन्तु शुद्धभक्ति द्वारा ही परिपूर्ण भगवत्स्वरूपकी उपलब्धि होती है। इस विषयमें और भी एक दृष्टान्त दिया जा रहा है—

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरिभिःविभाविता कृति।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः॥

जिस समय महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके निमन्त्रण करनेके लिये देवर्षि नारदजी आकाश-पथसे श्रीकृष्णके निकट आ रहे थे, उस समय श्रीकृष्णने उनको दूरसे एक तेजःपुञ्जके रूपमें, पुनः कुछ निकट आने पर आकारयुक्त शरीरीके रूपमें देखा तथा अत्यन्त निकट पहुँचने पर—ये देवर्षि नारद हैं—ऐसा देखा। एक ही नारद दूरीके तार-तम्यसे जिस प्रकार तीन रूपोंमें देखे गये, उसी प्रकार एक ही परतत्त्व तीन रूपोंमें प्रकाशित होता है।

श्रीभगवत्तत्त्व और परमात्मतत्त्वके आविर्भाव का तारतम्य है । ईश्वरतत्त्व निराकार नहीं हैं। उपासनामार्गमें प्रादेश-परिमाणके चतुर्भुज आकार वाले परमात्मतत्त्वका वर्णन पाया जाता है । श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धं स्वसंविदा ।
अविद्ययात्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥
(भा०१।३।३३)

जिस ज्ञानका आविर्भाव होनेपर—स्थूल-सूक्ष्म शरीरका आत्मामें अध्यास (आरोप) भ्रम कल्पित है—ऐसा अवगत हुआ जाता है, उसी ज्ञानका नाम ब्रह्म-साक्षात्कार है । ईश्वरके रूप अनेक प्रकारके होने पर भी उनमेंसे कौनसा भगवानका रूप है और कौनसा परमात्माका रूप है तथा दोनों स्वरूपोंके स्थान और कर्म कैसे कैसे हैं, इस प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीसूतजी कह रहे हैं—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः ।
संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥
(भा० १।३।१)

साधनके तारतम्यके अनुसार जो ब्रह्म-परमात्मा और भगवानके रूपमें आविर्भूत होते हैं, वे अखंड परतत्त्व श्रीभगवान सृष्टिके प्रारम्भमें लोक सृष्टिके लिये महत्तत्त्व आदिके साथ संभूत सोलह कलाओंके साथ पुरुषाकार प्रकट करते हैं। वे उससे भी पूर्व थे, परन्तु उस समय जगत नहीं रहनेके कारण उनके जगत सम्बन्धी प्रकाशकी संभावना नहीं थी। जगत उत्पन्न होनेपर उसके सामने प्रकट हुए। उन्होंने जगत्-सृष्टि आदिकी क्रिया-शक्तिको प्रकाशित किया। समष्टिजीव ब्रह्मा, व्यष्टिजीव और उनका अधिष्ठान चतुर्दश भुवन और देहोंको प्रकट करनेके लिये इस रूपको प्रकट किया। सृष्टिसे पूर्व यह सब कुछ इसी पुरुषके रूपमें लीन था। चित् शक्ति-समन्वित परमात्मा कालशक्ति द्वारा क्षोभिता गुण-मयी मायामें जीवाख्य चिदाभास अर्पण करते हैं। सात्वत तन्त्रमें उस पुरुषके तीन रूपोंका वर्णन है—(१) महत्तत्त्वके सृष्टिकर्त्ता—कारणार्णवशायी महा-विष्णु, (२) ब्रह्माण्डके मध्यमें स्थित प्रति ब्रह्माण्डके अन्तर्यामी—गर्भोदशायी पुरुष और (३) सर्वभूता-न्तर्यामी क्षीरोदशायी पुरुष। यह प्रथम पुरुष जगत् स्रष्टा होने पर भी सृष्टिके अतिरिक्त दूसरे कार्योंमें भी वे सर्वथा समर्थ हैं। इसीलिये उनको 'षोडशकल' अर्थात् सर्वशक्ति समन्वित भी कहते हैं। परन्तु इनका पूर्णत्व आपेक्षिक है। ये परमपुरुष स्वरूप शक्तिके आश्रय होनेपर भी मायाको क्षोभित करके जगतकी सृष्टि कराया करते हैं। श्रीभगवान इन पुरुषसे भी श्रेष्ठ हैं अर्थात् भगवान—पुरुषावतारके भी अंशी हैं। भगवान केवल स्वरूपशक्तिमें ही विलास करते हैं। मायाशक्तिके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

द्वितीय पुरुषका दर्शन—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद् ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥
(भा० १।३।२)

प्रथम पुरुषने जब अपने अंशसे ब्रह्माण्ड-गर्भ-वारिमें शयन कर योगनिद्राका विस्तार किया, तब उनके नाभिकमलसे विश्वकी सृष्टि करनेवाले

प्रजापतियोंके पति ब्रह्मा उत्पन्न हुए। प्रथम पुरुष प्रकृतिके प्रेरक हैं तथा सहस्रशीर्षादि लक्षणविशिष्ट लीलामय विग्रह हैं। उनके द्वारा प्रकृति क्षोभित होनेपर महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। इस महत्तत्त्वसे तीनों अहंकार, पंच-तन्मात्राएँ, पंचभूत, इन्द्रिय और इन्द्रियाधिष्ठात्री देवतासमूह उत्पन्न होते हैं। उनकी इच्छासे ये सब मिलकर ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं। इस अण्डमें प्रथम-पुरुष अपने अंशसे प्रविष्ट होते हैं। ब्रह्माण्डरूप गर्भमें प्रवेश करनेसे उस अंशका नाम गर्भोदशायी है। यहाँ मायावादियोंके जगत मिथ्यात्ववादका स्पष्ट रूपमें खण्डन होता है। प्रलयसे पूर्व जिस वस्तुका जो नाम और जो रूप था, सृष्टिके पश्चात् भी उन वस्तुओंका वही नाम और वही रूप प्रकाशित हुआ। भगवानका यह रूप विशुद्ध सत्त्वोर्जित है। इस पुरुषका आकार बतला रहे हैं—

पश्यन्त्यदोरूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम्।
सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत्॥

(भा० १।३।४)

उपासकवृन्द इस पुरुषके अगणित चरण, जाँघ, बाहु और मुखद्वारवाले, अगणित मस्तक, कर्ण, नयन और नासिकासे युक्त अगणित मुकुट, वस्त्र और कुण्डलोंसे सुशोभित रूपका भक्तिनेत्रोंसे दर्शन करते हैं। इनका भी पूर्णत्व है—

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः॥

(भा० १।३।५)

इस ब्रह्माण्डमें स्थित गर्भोदशायी पुरुष नाना अवतारोंके बीज और आश्रय हैं। इनके अंशसे देव-तिर्यक-नर आदिकी सृष्टि होती है। उसी पुरुषने चतुःसनके रूपमें आविर्भूत होकर अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रतका अनुष्ठान किया था। उन्होंने ही द्वितीय अवतारमें रसातलमें गयी हुई पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वराहरूप धारण किया था। तीसरे अवतारमें नारद के रूपमें आविर्भूत होकर भगवानके विषयमें अनुष्ठित कर्मोंका नैष्कर्म्य विधान करनेके लिये सात्वत तन्त्रोंको प्रकट किया है। कर्मसमूह जीवोंके संसार-बन्धनके हेतु हैं, परन्तु भगवत् सेवा—कर्मकी भाँति प्रतीत होनेपर भी बन्धन-मोचक होनेके कारण कर्मसे स्वतन्त्र है, देवर्षि नारदने सात्वत तन्त्रमें यही व्यक्त किया है।

चतुर्थावतारमें नरनारायण ऋषिके रूपमें आविर्भूत होकर उन्होंने आत्म संयम समन्वित तपस्याका अनुष्ठान किया था। पंचमावतारमें अधिपति कपिल के रूपमें आविर्भूत होकर आसुरि ब्राह्मणको तत्त्व-निर्णायक लुप्तप्राय सांख्यशास्त्रका उपदेश किया। षष्ठ अवतार दत्तात्रेयके रूपमें अलर्क आदिके निकट आत्मविद्या उपदेश किया। सप्तम अवतारमें यज्ञने स्वायंभुव मन्वन्तरका पालन किया। अष्टम अवतार ऋषभदेवने सर्व वर्णाश्रमके नमस्कार योग्य पारमहंस्य धर्मकी रीति-नीतिका आदर्श दिखलाया। नवम अवतार पृथुने राजदेह धारण करके पृथ्वीसे औषधि आदिका दोहन किया। दशम अवतारसे मत्स्यरूपमें नौकारूपमें कल्पिता पृथ्वीमें वैवस्वत मनुको बैठाकर उनकी रक्षा की। ग्यारहवें कुर्मरूपमें देवताओं और असुरों द्वारा समुद्र-मन्थनके समय मन्दराचल पर्वतको अपनी पीठ पर धारण किया था। बारहवें अवतारमें धन्वन्तरिके रूपमें अमृत लेकर समुद्रसे

प्रकटित हुए और तेरहवें मोहिनी अवतारमें समुद्रसे निकला हुआ अमृत दानवोंको वंचित कर देवताओंको पिलाया। चौदहवें अवतारमें नृसिंहरूप धारण कर हिरण्यकशिपुका वध किया। पन्द्रहवें अवतारमें वामनरूपमें बलि महाराजसे स्वर्गका राज्य इन्द्रको लौटाया। सोलहवें अवतारमें परशुराम रूपमें इक्कीस बार ब्राह्मण द्रोही राजाओंका संहार कर पृथ्वीको क्षत्रिय रहित कर दिया था। सत्रहवें अवतारमें सत्यवतीके गर्भमें व्यासरूपमें आविर्भूत होकर वेद-विभाग आदि किया था। अट्ठारहवें अवतारमें श्रीरामचन्द्रके रूपमें देवकार्य-साधनके लिये समुद्र बन्धन किया तथा रावण आदिका वध किया। उन्नीसवें और बीसवें अवतारमें राम और कृष्णने वृष्णिवंशमें आविर्भूत होकर पृथ्वीका भार हटाया था। इक्कीसवें अवतारमें बुद्धदेवके रूपमें असुर-मोहनके लिये गयामें अवतीर्ण हुए थे। बाइसवें अवतारमें कलियुगके अन्तमें राजागण दस्यु जैसे पर कल्किके रूपमें आविर्भूत होकर म्लेच्छ राजाओंका वध करेंगे।

इन अवतारोंमें जो अंशावतार हैं, उनके सम्बन्ध में यह विशेषरूपमें जानने योग्य है कि चतुःसन, नारद और व्यास आदिमें ज्ञान और भक्ति शक्तिका आवेश तथा पृथुमें क्रियाशक्तिका आवेश था।

महाप्रभावशाली ऋषि, देवता, मनु, मनुपुत्र और प्रजापतिगण—ये श्रीहरिके विभूति हैं। जिनमें अल्प शक्ति प्रकाशित होती है, वे विभूति कहलाते हैं और जिनमें महाशक्तिका प्रकाश होता है, वे आवेश हैं। विभूति और आवेशावतार दोनों ही स्वरूपतः जीव हैं। महत्तम जीवमें भगवानकी अल्प-शक्ति प्रकाशित होनेपर विभूति कहते हैं तथा अधिक शक्ति प्रकाशित होनेपर आवेश कहा जाता है। जिस प्रकार लोहा अग्निके संयोगसे अग्निका साधर्म्य प्राप्त करता है।

पहले जिन अवतारोंके नाम बतलाये गये हैं, वे सभी पुरुषावतारके अंश और कला हैं; परन्तु बीसवें अवतारके रूपमें कथित श्रीकृष्ण—पुरुषावतारके भी अंशी अवतारी स्वयं भगवान हैं। श्रीसूत गोस्वामीने श्रीमद्भागवतमें-'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' इस श्लोकमें इस परम सत्यतत्त्वका रहस्योद्घाटन किया है। श्रीसूत गोस्वामीने पहले विभिन्न अवतारोंका वर्णन करते समय उन अवतारोंमें श्रीकृष्णचन्द्रका भी समावेश कर दिया; परन्तु अगले श्लोकमें अपने भ्रममें संशोधन करते हुए 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'-इसकी स्पष्टरूपमें घोषणा कर दी।

अवतार प्रसंगमें श्रीराम-कृष्णका उल्लेख श्रवण कर शौनकादि ऋषियोंके मनमें ऐसी शंका उठी कि इन अवतारोंमें से कौन अंश हैं और कौन अंशी हैं? दूसरे दूसरे अवतारोंके वर्णनमें कहीं भी 'भगवान्' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है; परन्तु कृष्णके लिये 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—ऐसा उल्लेख क्यों? इस शंकाका समाधान करनेके लिये श्रीसूतने किसी असाधारण धर्म आदिका उल्लेख न कर सीधा उपदेश किया—श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान हैं। श्रीचरितामृतमें ऐसा ही कहा गया है--

कृष्ण यदि अंश हैत, अंशी नारायण।
तबे विपरीत हैत सूतेर वचन॥

मीमांसा - शास्त्रमें भी ऐसा कहा गया है कि परस्पर विरोधी वचनोंके समाधानके लिये श्रुति, लिंग, वाक्य प्रकरण, स्थान और समाख्या—इनमें से क्रमशः—न्यून प्रमाण हैं अर्थात् श्रुति सबसे श्रेष्ठ है। लिंग और श्रुतिमें श्रुति श्रेष्ठ है, लिंग और वाक्यमें लिंग श्रेष्ठ है। इसी प्रकार दूसरोंके सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। श्रीजीव गोस्वामीने भी कहा है—साक्षादुपदेशस्तु श्रुतिः; साक्षात् उपदेशको ही श्रुति कहते हैं।

ब्रह्मसंहितामें भी श्रीकृष्णको परमपुरुष घोषित किया गया है।

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्,
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो,
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥

—श्रीविदग्धि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीचैतन्य शिक्षामृत

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ११, संख्या ३, पृष्ठ ७२ से आगे]

भक्ति प्राप्त करनेके दो पथ

यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि जीव दो प्रकारसे भक्ति प्राप्त करता है—(१) क्रमोन्नति प्रथासे या (२) आकस्मिक प्रथासे। श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य-खण्डमें श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीरूपगोस्वामीको क्रमोन्नति प्रथाका उपदेश इस प्रकार किया है—

तार मध्ये स्थावर जङ्गम दुइ भेद।
जङ्गमे तिर्यक् जल-स्थलचर विभेद॥
तार मध्ये मनुष्य जाति अति अल्पतर।
तार मध्ये म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध, शवर॥
वेदनिष्ठ मध्ये अर्द्धेक वेद मुखे माने।
वेद विप्लिद्ध पाप करे धर्म नाहि गणे॥
धर्माचारी-मध्ये बहुत कर्मनिष्ठ।
कोटि कर्मनिष्ठ-मध्ये एक ज्ञानी श्रेष्ठ॥
कोटि ज्ञानी मध्ये हय एक जन मुक्त।
कोटि मुक्त मध्ये दुर्लभ एक कृष्ण भक्त॥
कृष्ण भक्त निष्काम अतएव शान्त।
भुक्ति-मुक्ति सिद्धि कामी सकलइ अशान्त॥

भक्त जीवनकी सर्वश्रेष्ठता

वृक्षादि स्थावर आच्छादित चेतन हैं। स्थलचर, जलचर और नभचर आदि संकुचित चेतन हैं। पुलिन्द, शबर आदि वन्यजातीय मानवगण एवं विज्ञान शिल्प और सभ्यतासम्पन्न म्लेच्छगण नीति-शून्य हैं। बौद्ध आदि निरीश्वर मानवगण केवल-नैतिक हैं। जो लोग वेदको मौखिकरूपमें मानते हैं—वे कल्पित सेश्वरनैतिक हैं। धर्माचारिगण—वास्तव सेश्वरनैतिक हैं। इनलोगोंमें से कोई-कोई विशुद्ध तत्त्वज्ञानःनिरत होते हैं। बहुतसे तत्त्वज्ञानियोंमेंसे कोई

कोई जड़बुद्धिमुक्त होते हैं। करोड़ों जड़बुद्धिमुक्तोंमेंसे कोई विरला ही भक्ति स्वीकार करते हैं। सेश्वर-नैतिकोंमें से जो लोग भोगरूप कर्मफल, मुक्तिरूप ज्ञानफल या सिद्धिरूप योगफलको ग्रहण करते हैं—वे अशान्त होते हैं। कृष्णभक्त ही केवल शान्त होते हैं। श्रीमन्महाप्रभुके उपदेशका तात्पर्य यह है कि जंगली मनुष्यगण पहले सभ्य और ज्ञानसम्पन्न बनें, फिर वे नीति स्वीकार करें, तत्पश्चात् ईश्वर विश्वासी होकर धर्मका आचरण करें। पुनः धर्माचारीगण भोग, मोक्ष और सिद्धिरूप अवान्तर फलमें आबद्ध न होकर कृष्णभक्तिको स्वीकार करें। नर-जीवन की क्रमोन्नतिका यही वैध सोपान है। सभी शास्त्रों का यही मत है।

श्रीमन्महाप्रभुजीने श्रीसनातन गोस्वामीको आकस्मिकी प्रथाका उपदेश इस प्रकार दिया है—

संसार भ्रमिते कोन भाग्ये केह तरे।
नदीर प्रवाहे जेन काष्ठ लागे तीरे॥

भक्त जीवनमें समग्र नैतिक गुणों का समावेश है

कृष्णकृपा, साधुकृपा और पूर्व पूर्व साधनोंके फलस्वरूप विघ्नविनाश—इन तीनोंके द्वारा आकस्मिकी प्रथा जहाँ कार्य करती है, वहाँ क्रमोन्नति-विधि स्थगित हो पड़ती है। समस्त प्रकारकी विधियों के निर्माता श्रीकृष्णकी स्वतंत्र इच्छा ही इसका मूल कारण है। युक्ति-तर्कके द्वारा इसका सामञ्जस्य नहीं हो सकता। सारे विपरीत धर्म जिस तत्त्वमें सामञ्जस्य लाभ करते हैं, उस तत्त्वमें विधि और कृपाका युक्तिगत विरोध भी जिसे मानव-बुद्धि सामञ्जस्य करनेमें असमर्थ है—उस तत्त्वमें सामञ्जस्य लाभ करता है। देवर्षि नारदकी कृपासे अनैतिक व्याधने नीति स्वीकार न करके भी भक्तजीवन अपनालिया था। श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे भीलनी-स्त्री शबरीने भी भाव (भक्तिमय जीवन) को प्राप्त किया था। उन्होंने वन्य-जीवन और भक्त जीवनके बीच जीवन के अन्यान्य अवस्थाओंके धर्मोंका अभ्यास या आचरण नहीं किया था। इससे ऐसा जाना जाता है कि भक्त जीवनकी प्राप्तिके साथ ही साथ उनके जीवनमें सभ्य जीवन तथा नैतिक जीवनके गुणोंका समावेश सहज ही हो उठा था। (क)

आकस्मिकी प्रथा विरल और अचिन्त्य है।

(क) सत्संगेन हि दैतेया यातुधानाः मृगाः खगाः। गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः॥
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शुद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः। रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ॥
बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः। वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः॥
सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः। व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे॥
ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासीतमहत्तमाः अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः।
(भा० ११।१२।३-७)

यं न योगेन साङ्ख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः। व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयादयत्नवानपि।
(भा० ११।१२।६)

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्। प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च श्रोतव्यं श्रुतमेव च॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्। याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः॥
(भा० ११।११।१४-१५)

अतएव उस पर भरोसा न करके क्रमोन्नति-प्रथाका अवलम्बन करना ही उचित है। यदि किसी समय सौभाग्यसे आकस्मिकी प्रथा स्वयं उपस्थित हो जाय, तो अत्यन्त उत्तम बात है।

क्रमोन्नति-प्राय नियमाग्रह परित्यज्य है

क्रमोन्नति पथमें जीवका यह कर्त्तव्य है कि वह जिस किसी भी जीवनमें क्यों न अवस्थित हो, उस जीवनसे अधिक उच्च जीवनमें प्रवेश करनेके लिये विशेष प्रयत्न करें। स्वभावकी गतिमें ऐसा कोई कल्याणका बीज होता है जिससे समयानुसार जीव की स्वाभाविक रूपसे उच्च गति होती रहती है। परन्तु इसमें विघ्न-बाधाएँ भी इतनी अधिक होती हैं कि अधिकांश क्षेत्रोंमें इच्छित फलकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिए जो लोग उच्च गति चाहते हैं, उनको इन विघ्न-बाधाओंके प्रति सर्वदा जागरुक रहना चाहिए। एक जीवनसे दूसरे जीवनमें पदार्पण करते समय दो बातों पर विशेष रूपसे विचार करना चाहिये। पहली बात यह कि मैं जिस जीवनमें स्थित हूँ, उसमें दृढ़तापूर्वक स्थित रहनेके लिये निष्ठा की आवश्यकता है। दूसरी बात यह कि जिस जीवनमें मैं दृढ़रूपसे प्रतिष्ठित हो चुका हूँ, उससे उच्च जीवनमें पदार्पण करनेके लिये—पूर्वनिष्ठाका त्याग करनेके लिये एक पैर एक सोपान पर दृढ़तासे जमाकर नीचले पैरको नीचले सोपानसे उठाकर उच्चस्थ सोपान पर रखना होगा। एक सोपानगत निष्ठाका त्याग और दूसरी उच्च सोपानगत निष्ठाकी प्राप्ति एक ही समय में होता है। अधिक जल्दबाजी करनेसे गिरनेका डर रहता है। साथ ही अधिक विलम्ब करनेसे फल प्राप्तिमें विलम्ब होता है। जीवको जंगली असभ्य जीवन, सभ्यजीवन, केवल नैतिक जीवन, कल्पित सेश्वर नैतिक जीवन, वास्तव सेश्वर नैतिक जीवन और साधन भक्त जीवन—इन सब सोपानोंको क्रमोन्नतिविधिके अनुसार क्रमशः पारकर प्रेम-मन्दिरमें जाना पड़ता है। किसी सोपान में व्यस्तता हो जाने पर विघ्न द्वारा नीचे गिरना पड़ता है। किसी सोपानमें विलम्ब होनेपर आलस्य घेर कर उन्नतिमें बाधा देता है। इसलिये व्यस्तता और विलम्ब दोनोंको विघ्न समझकर आवश्यकतानुसार यथायोग्य निष्ठाको ग्रहण करके तथा अनुपयुक्त निष्ठाका त्यागकर जीवको क्रमशः ऊपर उठना पड़ेगा। कुछ लोग ऐसा दुःख प्रकाश करते हैं कि मुझे क्यों कृष्णभक्ति नहीं होती। परन्तु उनमें कृष्णभक्तिके सोपान पर चढ़नेके लिये उपयुक्त चेष्टा का अभाव देखा जाता है। वे लोग असभ्य अवस्था, सभ्यता, जड़ विज्ञान, निरीश्वर-नीति या सेश्वर नीति—इनमेंसे किसी एकके प्रति आसक्त होकर वहीं रुक जाते हैं—उन्नतिके लिये चेष्टा नहीं करते (क)। किसी एक सोपानमें आबद्ध रहने पर—रुक जाने पर ऊपरवाले सोपानपर कैसे चढ़ा जा सकता है? अथवा राजप्रसादके सबसे ऊपरी मंजिलमें कैसे पहुँचा जा सकता है? अनेक वैध भक्त भाव पानेके

(क) अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः। जनसङ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति।

(उपदेशामृतम्)

लिये चेष्टा नहीं करते, फिर भी भावके अभावमें प्रचुर दुःख प्रकाश किया करते हैं। अनेक वर्णाश्रमी लोग वर्ण-धर्मकी निष्ठाके प्रति इतने आसक्त हो पड़ते हैं कि उन्हें भाव और प्रेम आदिकी आवश्यकता प्रतीत ही नहीं होती और इसीलिये वे भाव और प्रेम प्राप्तिकी चेष्टाके प्रति सर्वथा उदासीन रहते हैं। इससे उनकी क्रमोन्नतिमें प्रचुर बाधा पड़ती है। जिन लोगोंको सौभाग्यवश श्रीचैतन्य-शिक्षामृत मिल गया है, उनकी शीघ्रतासे उन्नति होती है। ऐसे सौभाग्यवान लोग इसी क्षुद्र जीवनमें ही सामान्य वर्णाश्रम-धर्म-निष्ठासे ऊपर उठकर निरुपाधिक प्रेमरत्नको सहज ही प्राप्त करते हैं। जो लोग क्रमोन्नति-विधिका ठीक-ठीक रूपमें पालन करते हैं, उनको अधिकांश रूपमें जन्मान्तरकी अपेक्षा नहीं रहती। इसके विपरीत जो लोग मरी हुई मछलीकी भाँति अपनी सत्ताको भाग्यके स्रोतमें विसर्जन कर देते हैं—भाग्यसे जैसा होगा—इसपर भरोसा कर स्वयं चेष्टारहित हो पड़ते हैं, वे इस अनन्त अथाह और भयंकर भव-समुद्रमें उतराते-उतराते कभी समुद्रके ज्वारके साथ कुछ दूर आगे जाते हैं और कभी भाटेके साथ पीछेकी ओर बह जाते हैं। वे अभिलषित स्थान पर शायद ही कभी पहुँच सकें (ख)।

भक्तिका परिचय

उपरोक्त दोनों प्रकारकी भक्तिका जो साधारण लक्षण है, वह वैधीभक्तिमें भी लक्षित होता है। भक्तिका सामान्य लक्षण यह है कि जिससे भक्तिकी समृद्धि हो, ऐसी अभिलाषाओंको छोड़कर दूसरी-दूसरी प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञान और कर्म आदि द्वारा अनावृत, अनुकूल भावसे कृष्णानुशीलनको 'भक्ति' कहते हैं (क)। इसका अर्थ यह है कि अनुशीलन ही भक्तिका स्वरूप है। कर्म-मार्गमें वर्णाश्रमधर्म-विचारके प्रसंगमें जिस ईश्वर-अनुशीलनका विवेचन हुआ है, वह नैतिक कार्यके अन्तर्गत एक व्यवहार मात्र है, वह भक्ति नहीं है, क्योंकि वहाँ पर नीति ही प्रभु या प्रधान है और ईश्वरानुगत्यरूप वृत्ति वहाँ नीतिरूप प्रभुके दासके अवस्थित है। ज्ञान-मार्गमें जिस ब्रह्मका विचार रूप में किया जायगा, उसका अनुशीलन शुष्कज्ञानमय होता है। उसमें ज्ञान ही प्रभु और ईशानुगत्य रूप वृत्ति दास-स्वरूप है। अतएव वह भक्ति नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एकमात्र भगवदनुशीलन ही—

(क) मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा। अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥
(गीता ९।३२-३३)

(ख) अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।
(भ. र. सि)

है (क)। यह अनुशीलन सर्वदा आनुकूल्यभावमय होना आवश्यक है। अनुशीलन प्रातिकूल्यमय भी हो सकता है, परन्तु ऐसा प्रतिकूल अनुशीलन भक्ति नहीं है। तात्पर्य यह कि जीवनको भक्तिके अनुकूल करके भक्तिका अनुशीलन करना चाहिये। संसारमें वर्तमान जीवोंके शरीर सम्बन्धजनित कर्म अनिवार्य हैं। साथ ही जड़ाजड़सम्बन्धीय विचाररूप ज्ञान भी अनिवार्य है। परन्तु ये कर्म और ज्ञान जहाँ भगवदनुशीलनको आवृत कर देते हैं, वहाँ भक्तिकी सत्ता नहीं रहती। बल्कि जहाँ पर ईशानुगत्यरूप वृत्ति कर्म और ज्ञानके ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करती है, वहीं भक्तिकी सत्ता स्वीकार की जा सकती है।

वैधी-भक्तिका लक्षण

वैधभक्तजन भगवदनुशीलनको ही जीवनका प्रधान कार्य समझेंगे। उन्हें सदा-सर्वदा अनुकूल रूपमें भगवदनुशीलन करना चाहिये। वे किसी भय और द्वेषसे प्रेरित होकर उनका अनुशीलन नहीं करेंगे, बल्कि प्रीतिपूर्वक अनुशीलन करेंगे। इसीका नाम आनुकूल्य है। वर्णाश्रम धर्मद्वारा शरीरयात्रा निर्वाह करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उस धर्मका मूल जो नीति है, वह नीति भगवदनुशीलन के ऊपर किसी प्रकारका प्रभुत्व जमाने न पावे, बल्कि नैतिक व्यवहारको भगवदनुशीलनके सेवक रूपमें रखेंगे। साथ ही आत्मा जड़ातीत और चिद्वस्तु है—ऐसी उपलब्धि करने के लिये जो ज्ञानालोचना की जाय, उसे भी भगवदनुशीलनके सेवकरूपमें रखेंगे, इन विचारोंको कभी भी अनुशीलनवृत्तिके ऊपर प्रभुत्व न करने देंगे। संसारमें जो भी कर्म करें या जो भी विचार करें, उनके द्वारा भक्तिकी उन्नति साधनके अतिरिक्त और कोई दूसरी अभिलाषा न करें। वैधभक्तोंका जीवन ऐसा ही होना चाहिये।

(क) देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम्। सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या॥
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी। जरयत्याशु या कोषं निगीर्णमनलो यथा॥
(भा. ३।२५।३२-३३)

मद्गुण श्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये। मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्। अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥
(भा. ३।२९।११-१२)

बधाई

गिरिवर राज की कलित कृपा तें आज
नन्द के अनन्द भयौ जसुदा मन भावनौ।
शंकर यदुवंश-वर-वारिधि के मध्य मनौ
उदित भयौ है ये सुधाकर सुहावनौ॥
हर्षित भये हैं विधि शम्भु लौ विबुध-गण
जसुदा के कलित-कस परौ पेखि पालनौ।
जुगजुग जीवै ये व्रजेश कौ लड़ेतौ लाल
घर घर द्वार द्वार बाजत लघावनौ॥
सारद गुनीन्द्र सुर नारद नरेन्द्र मुनि
सर्व गन्धर्व मिलि गावत कल गावनौ।
शंकर फणीन्द्र इन्द्र गजमुख शम्भु ब्रह्म
बैठिकै विमान व्योम हेरत हैं साजनौ॥
विधुसी वदन वारी नलिन नयन वारी
प्यारी वृज-वारी कौ नियारौ होत नाचनौ।
जुग जुग जीव ये व्रजेश कौ लड़ेतौ लाल
घर घर द्वार द्वार बाजत बधावनौ॥

—शङ्करलाल चतुर्वेदी, एम. ए., एल. टी,

प्रचार-प्रसंग

झूलन-उत्सव

(क) श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा में—

गत २३ श्रावण, ८ अगस्त, रविवार, एकादशीसे लेकर २७ श्रावण, १२ अगस्त, बृहस्पतिवार, पूर्णिमा तक श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीका झूलन महोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। सभा-मण्डप, हिंडोला और श्रीमंदिर नाना प्रकारकी आलोक मालाओं रङ्ग-बिरंगे वस्त्रों, कदली वृक्षों तथा आम्रपल्लवोंसे सुसज्जित हो रहे थे। नित्य नई-नई झाँकियाँ, विराट हरिसंकीर्तन और प्रवचन आदि महोत्सवके मुख्य आकर्षण थे। प्रतिदिन दर्शकोंकी बड़ी भीड़ने झूलनका दर्शन तथा हरि-कथाका श्रवण किया।

(ख) श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें—

समितिके मूल मठ, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें यह झूलन महोत्सव विराट रूपमें सम्पन्न हुआ है। वहाँ मठके नवनिर्मित्त विशाल मंदिर और विराट श्रीहरि-संकीर्तन-नाट्य मंदिरमें श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीके झूलेकी बड़ी ही सुन्दर झाँकियाँ प्रस्तुत की गयी थीं। वहाँ श्रीश्री-राधाविनोदविहारीजीके झूलेकी भव्य झाँकीके साथ-साथ श्रीकृष्णकी अनेकानेक ललित लीलाओंके विशिष्ट चित्र प्रस्तुत किये गये थे। ये सभी झाँकियाँ विद्युतके द्वारा चालित होकर दर्शकोंको मंत्रमुग्ध कर रही थीं। प्रति दिन ७ बजे शामसे १॥ बजे रात तक दर्शकोंकी भीड़ लगी रहती थी।

(ग) श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाम में—

समितिके उपरोक्त दोनों मठोंके अतिरिक्त श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाम एवं अन्यान्य सभी मठोंमें झूलन महोत्सव बड़े धूम धामसे सम्पन्न हुआ है। श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें यह उत्सव श्रीश्रील आचार्यदेवके निर्देशानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजकी देख-रेखमें सम्पन्न हुआ। अंतिम दिन लगभग ५०० श्रद्धालु व्यक्तियोंको श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीका महा-प्रसाद दिया गया है।

श्रीबलदेवाविर्भाव

गत २७ श्रावण, १२ अगस्त, बृहस्पतिवार, पूर्णिमाके दिन श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव-तिथि समितिके सभी शाखा मठोंमें उपवास, कीर्तन, भाषण और प्रवचनके माध्यमसे पालित हुई है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें एक विशेष धर्म सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें श्रीबलदेव तत्त्वकी विशद रूपमें आलोचना की गयी थी।

श्रीश्रीजन्माष्टमी-व्रत और श्रीश्रीनन्दोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत ३ भाद्र, २० अगस्त, शुक्रवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी व्रतोपवास और दूसरे दिन शनि-वारको श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुए हैं।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें—

यहाँ यह उत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। श्रील आचार्यदेव इस वर्ष इस उत्सवके समय यहाँ विराजमान रहनेसे यह महोत्सव और भी सजीव हो उठा था। इस उत्सवके उपलक्ष्यमें यहाँ श्रीश्रीकृष्णकी जन्मलीला प्रदर्शनीका बड़ा ही भव्य आयोजन किया गया था। यह प्रदर्शनी दर्शकोंके अनुरोधसे २० अगस्तसे ३ सितम्बर श्रीश्रीराधाष्टमी तक खुली रही। प्रति दिन दर्शकों एवं हरिकथा-श्रोताओंकी बड़ी भीड़ होती थी। प्रदर्शनीमें कृष्णकी विविध प्रकारकी मनोरम लीलाओंके दृश्य थे, जो विद्युत शक्ति द्वारा परिचालित होते थे तथा दर्शकों के हृदयमें भक्ति भावको भर देते थे। इस उत्सवके अवसर पर परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव तथा विभिन्न त्रिदण्डी चरणोंके भाषण एवं प्रवचन हुए। श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके दिन उपवास रह कर सवेरेसे १२ बजे रात तक श्रीमद्भागवत दशम स्कंधका पारायण हुआ। दूसरे दिन नन्दोत्सवके अवसर पर लगभग १००० लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा में

यहाँ पर भी गतवर्षकी भाँति उक्त दिवस श्रीमंदिर और नाट्य मंदिरको आम्रपल्लव, कदली वृक्ष तथा रङ्ग-बिरङ्गी आलोकमालाओं द्वारा खूब सजाया गया था। सवेरेसे रात १२बजे तक उपवास रह कर श्रीमद्-भागवत दशम स्कंधका पारायण किया गया। त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त भिक्षु महाराज, श्रीकुञ्जविहारी ब्रह्मचारी तथा श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारीके उपदेश पूर्ण भाषण हुए। अंतमें त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीकृष्ण तत्त्वके विभिन्न पहलुओं पर बड़ा ही रोचक और विद्वतापूर्ण भाषण दिया। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसर पर दोपहरमें निमंत्रित अनिर्मंत्रित लगभग ५०० श्रद्धालु व्यक्तिओंको विविध प्रकार का सुस्वादु महाप्रसाद वितरण किया गया।

अन्यान्य मठों में

इसी प्रकार श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ा, श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाम, श्रीगौड़ीय मठ पिछलदा (मेदिनीपुर) आदि समितिके समस्त शाखामठोंमें खूब समारोहके साथ जन्माष्टमी व्रत और श्रीनन्दोत्सव सुसम्पन्न हुए हैं।

श्रीराधाष्टमी व्रत

गत १७ भाद्र, ३ सितम्बर, शुक्रवारको समिति के समस्त शाखामठोंमें श्रीश्रीराधाष्टमीका महोत्सव खूब समारोहके साथ मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उक्त दिवस त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीश्रीराधा तत्त्वके सम्बन्धमें पाण्डित्यपूर्ण शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया। दोपहरमें श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीका विशेष रूपसे भोगराग सम्पन्न होने पर उपस्थित सबको महाप्रसाद वितरण किया गया।

— प्रकाशन

पाकिस्तानी दस्युओंकी पराजय सुनिश्चित है

घृणा और द्वेषकी नींव पर स्थापित पाकिस्तान अपने गर्भाधानके समयसे ही भारतको हर प्रकारसे अपमानित और लांछित करनेकी चेष्टा करता आ रहा है। इसके लिये वह नीच-से-नीच और घृणीत-से-घृणीत षड्यन्त्र करनेमें कुण्ठित नहीं होता। इसका कारण उसके मूल बीजमें ही दोष है। भारत उसके अक्षम्य और भयंकर अपराधोंको क्षमा करते आ रहा है। परन्तु खल सर्प किसी दयालु व्यक्ति द्वारा दूध पिलाये जाने पर भी उसे सर्वदा डँस लेनेकी ही फिराकमें रहता है—अपनी दुष्टतासे बाज नहीं आता।

परन्तु वर्तमान समयमें पाकिस्तानी दस्युओंकी दुष्टता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी—उसने भारत विरोधी राष्ट्रोंसे षड्यंत्र कर भारतके अभिन्न अङ्ग काश्मीर पर नग्न-आक्रमण कर दिया तथा अन्यान्त सीमाओं पर भी भीषण आक्रमणका षड्यन्त्र प्रस्तुत कर भारतको रक्षात्मक कदम उठानेके लिये बाध्य कर दिया है। ऐसी दशामें भारत सरकारने साहसिक और उचित कदम उठा कर, देशके सारे राजनैतिक दल एक होकर सरकारके साथ मिल कर कार्य करनेका संकल्प ग्रहण कर, हमारे बहादुर योद्धा रणक्षेत्रमें अनुपम और आदर्श शूरता-वीरता का उदाहरण प्रस्तुतकर तथा हिमालयसे कन्याकुमारी तक की सारी भारतीय जनताने एक होकर शत्रुओंको मार भगानेके लिये कृत संकल्प होकर शत्रुको जिस प्रकारसे स्तंभित कर दिया है उससे भारत सरकार, विभिन्न राजनैतिक दल, हमारी सेना तथा जनता, सभी बधाईके पात्र हैं।

शान्ति पूर्वक वास करनेके लिये दृढ़ शक्तिकी आवश्यकता होती है। दृढ़ शक्तिके बिना लोक-परलोक कुछ भी संभव नहीं। युद्धसे ध्वंश होता है—यह ठीक है, परन्तु देशकी अखण्डता और स्वतंत्रता की रक्षाके लिये वह अनिवार्य भी है। करुणावरुणालय भगवान भी जगत् विध्वंशकारी आसुरी शक्तियों का दमन करनेके लिये समय-समय पर अवतीर्ण होते हैं। भगवान कृष्णने अवतरित होकर अत्याचारी कंस, अघासुर, बकासुर, शिशुपाल, दन्तवक्र, कालयवन और नरकासुर आदि दुष्टोंका विनाश किया, भगवान श्रीरामने दुराचारी रावणका ससैन्य सबंश ध्वंश किया, भगवान नृसिंह देवने महा दुर्दान्त हिरण्यकशिपुका संहार किया। उसी प्रकार भगवद्भक्त धर्मावतार युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंने वाहिनी समेत कौरवोंका विनाश कर, परम भगवद्भक्त हनुमान आदिने सोनेकी लंका जला कर जगत-शान्तिकी स्थापना का आदर्श रख छोड़ा है।

अतएव पाकिस्तानके दस्युओंको उचित दण्ड देकर उसे सीधे रास्ते पर लानेके लिये सारे भारतको और भी सजग होकर हर प्रकारसे तैयार हो जाना चाहिए। कठिनाइयाँ बढ़ सकती हैं। परन्तु हमारे शास्त्र और इतिहास इसके साक्षी हैं कि अत्याचारियों का शीघ्र ही विनाश होता है, उसका पराजय अवश्य होता है। पाकिस्तान अत्याचारी है, आक्रामक है, और आततायी है, अतः भारतकी जय और पाकिस्तानकी पराजय सुनिश्चित है।

———